International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(2): 140-143

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(2): 140-143
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 18-01-2021
Accepted: 23-02-2021

श्रवण
शोधच्छात्र, संस्कृत-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ, भारत

Corresponding Author:
श्रवण
शोधच्छात्र, संस्कृत-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ, भारत

शुक्रनीतिगत राजनैतिक सिद्धान्त

श्रवण

भूमिका –

भारतवर्ष में शिक्षा की परंपरा निरंतर चलती आ रही है। ऋषियों ने अपने ध्यान-तप तथा योग बल से ऋचाओं का मनन किया तथा परंपरागत शिक्षा को आगे प्रदान किया। इस वर्ष में शिक्षा का अधिक महत्व है, शिक्षा को सर्वप्रमुख माना जाता है। आचार्य अपने शिष्यों को स्वभाव, पात्रता व जिज्ञासा के अनुरूप शिक्षा प्रदान करते हैं, आचार्य अपने शिष्यों से यह भी कहता है कि जो मेरे द्वारा पढ़ाया गया अच्छा गुण है वह धारण करो, अथवा ग्रहण करो अन्य को त्याग कर दो। भारतीय शिक्षा परंपरा बहुत महान है जो अपने शिष्यों को केवल अच्छाई की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करती है।

सृष्ट्युत्पत्ति के साथ-साथ वेदों की उत्पत्ति हुई, चारों वेद जो कि संपूर्ण ज्ञान, विज्ञान, कर्म, उपासना से ओतप्रोत हैं। वेदों के माध्यम से ऋषियों को ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ तथा उन्होंने वेदविहित आचरणों को निभाया। क्रमानुसार वेदोपरान्त इन वेदमंत्रों की व्याख्या करने के लिए ब्राह्मण ग्रंथों की रचना हुई, जिसमें सभी सामान्य विधि से लेकर समस्त विशेष यज्ञ व कार्यक्रमों की विधि बतलाई गई। ब्राह्मणग्रन्थों के पश्चात् आरण्यक ग्रन्थों का प्रादुर्भाव हुआ जिसमें रहस्यात्मक ज्ञान की चर्चा की गई। पुनः उपनिषदों के अध्ययन से मनुष्य वेदमंत्रविहित दार्शनिक तथ्यों को जानने लगा। इस प्रकार वेद वेदांग दर्शनों का भी ज्ञान जनमानस के सम्मुख दुखों की निवृत्ति हेतु उत्पन्न हुआ। इसी क्रम में स्मृतिग्रन्थों की भी रचना हुई। स्मृतिग्रन्थों की संख्या अनेक हैं। यहाँ आचार्य शुक्र द्वारा प्रणीत शुक्रनीति के विषय से सम्बन्धित होने के कारण शुक्रनीति के विभिन्न सन्दर्भों की चर्चा की जाएगी।

नीति का अर्थ –

नीति शब्द "णीञ् प्रापणे" धातु से महर्षि पाणिनिकृत अष्टाध्यायी सूत्र "स्त्रियां क्तिन्" से "क्तिन्" प्रत्यय के योग से सिद्ध होता है। नीति शब्द के निर्वाचन की ओर अगर दृष्टिपात करें तो यह प्रतीत होता है कि – "नीयते व्यवस्थाप्यते स्वेषु स्वेषु सदाचारेषु लोकाः यया सा नीतिः"। अर्थात् जिससे संपूर्ण मनुष्यों को सदाचार की ओर प्रेरित किया जा सके अथवा सदाचार में स्थापित किया जा सके और कुमार्ग से हटाकर सुमार्ग की ओर प्रवृत्त किया जा सके उसी का नाम नीति है। नीति के सन्दर्भ में स्वयं शुक्राचार्य ने भी इस प्रकार इङ्गित किया है –

"नयनान् नीतिरुच्यते"।[1]

अर्थात् समस्त प्रजाजनों को धर्म की ओर ले जाना अथवा धर्म की ओर प्रवृत्त करवाना ही नीति है। प्रजा जनों को धर्म की ओर प्रवृत्त कौन करावे इस संदर्भ में पितामह भीष्म का प्रसंग उपस्थित होता है उनका कहना है कि –

चातुर्वर्ण्यस्य धर्माश्च रक्षितव्या महीक्षिता।
धर्मसंकररक्षा च राज्ञां धर्म सनातनः।।[2]

अर्थात् राजा का ही यह कर्तव्य बन जाता है कि वह अपने समस्त परिजनों की रक्षा करे व धर्म की ओर प्रवृत्त करावे। इस नीति का संचालक राजा ही होता है अतः इस नीति को राजनीति अथवा राजधर्म भी कहा जाता है।

नीति शास्त्र का प्रयोजन -

यथा यह सुविदित है कि प्रयोजन के बिना कोई भी व्यक्ति कार्य करता नहीं है, यहाँ तक कि कोई मूर्ख व्यक्ति भी बिना प्रयोजन किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता है। पुनः इस महान् नीतिशास्त्र का प्रयोजन से रहित होना कैसे संभव हो सकता है, अर्थात यह नीतिशास्त्र प्रयोजन सहित है। इस ग्रंथ का प्रयोजन इस प्रकार बताया गया है –

नृपस्य परमो धर्म प्रजानां परिपालनम्।
दुष्टनिग्रहणं नित्यं न नीत्या ते विना ह्युभे।।[3]

अर्थात् संपूर्ण विश्व सुख-शांति पूर्वक रहे, सभी प्रजाजन आनंद से जीवन यापन करें, धर्म आचरण करें, इन सभी मनुष्यों का नेता राजा ही होवे। राजा ही समस्त प्रजाओं का पालन करें एवं राज्य शासन में जो भी व्यक्ति नियमों का पालन न करे उनको दंडित करना भी राजा का कर्तव्य बन जाता है। अर्थात् प्रजा पालन और दुष्ट दमन यह दोनों राजा का परम कर्तव्य है जो कि नीतिशास्त्र के बिना सिद्ध नहीं हो सकता है। अतः नीति शास्त्रों का अध्ययन परमावश्यक है। इस प्रसंग में महाभारत में वर्णित नीति के संबंध में कहा गया है कि –

दण्डनीतिं पुरस्कृत्य विजानन् क्षत्रियः सदा।
अनवाप्तं च लिप्सेत लब्धं च परिपालयेत्।।[4]

अर्थात् राजा को दण्डनीति को आश्रित करते हुए उनके द्वारा अप्राप्य वस्तु को पाने की इच्छा करे और प्राप्त वस्तु की रक्षा करे। दण्डनीति के प्रयोग से धन-धान्यादि और यश की प्राप्ति होती है, यह अलब्धलाभ दण्डनीति का प्रथम फल है। लब्ध वस्तुओं की रक्षा करना है लब्धसंरक्षण है जो कि दण्डनीति का द्वितीय फल है। इस प्रकार नीतिशास्त्र का प्रयोजन सारगर्भित है।

शुक्रनीति में वर्णाश्रम धर्म का प्रतिपादन किया गया है। यतो हि यह नीतिशास्त्र है, नीतिशास्त्रों में तो वर्णाश्रम धर्म का विषय नितांत आवश्यक होता है क्योंकि वर्णाश्रम व वर्णव्यवस्था के ज्ञान के बिना किसी भी मनुष्यों को उचित मार्ग में नहीं प्रवृत्त किया जा सकता है। शुक्रनीति में अनेक नीतियों का प्रतिपादन करने के साथ-साथ वर्णाश्रम धर्म का भी वर्णन किया गया है। इसमें राज्य शासन तथा राज्य व्यवस्था की भी विवेचना की गई है। शुक्रनीतिगत प्रमुख राज्य व्यवस्था के विषयों का सार निम्नलिखित है -

राज्योत्पत्ति

प्राचीन आचार्यों की भाँति आचार्य शुक्र राजा को इन्द्रादि आठ लोकपालों का एक अंश के रूप में स्वीकार किया है। [5] इस वर्णन से यह प्रतीत होता है कि शुक्राचार्य राज्योत्पत्ति के संदर्भ में दैवी-सिद्धांत के पक्षधर रहे होंगे।

राजा

राजा के दो रूप शुक्रनीति में वर्णित किए गए हैं। प्रथम देवांश तथा द्वितीय राक्षसांश। धर्म में प्रवृत्त होकर धर्म आचरण करने वाला राजा तो देवांश कहलाता है एवं धर्म का लोप करने वाला तथा प्रजा को पीडित करने वाला राक्षसांश कहलाता है। इन दोनों राजाओं के विषय में शुक्रनीति में विशद चर्चा की गई है। यथोक्तं –

यो हि धर्मपरो राजा देवांशोऽन्यश्च रक्षसाम्।
अंशभूतो धर्मलोपी प्रजापीडाकरो भवेत्।।[6]

राजा के कर्तव्य

इस नीतिग्रन्थ के अनुसार राजा के दो प्रमुख कर्तव्यों का वर्णन किया गया है यथा - प्रजा पालन (भरण पोषण) तथा दुष्टदमन।[7] इन प्रमुख दो कर्तव्यों के अतिरिक्त यज्ञ-यागादि अनुष्ठान, राजसूयादि यज्ञ करना, न्यायोचित निर्णय लेना, कर प्राप्त करना, अपने राज्य की निरंतर वृद्धि में तत्पर रहना इत्यादि कर्तव्य बताए गए हैं।

उत्तराधिकार

उत्तराधिकार के संदर्भ में आचार्य शुक्र ने विस्तृत विवेचन प्रदान किए हैं। यथा प्रथम उत्तराधिकारी तो ज्येष्ठ औरस पुत्र ही होवे, जेष्ठ पुत्र की अगर कोई शारीरिक विकृति मिलती है तो कनिष्ठ पुत्र अथवा भाई के पुत्र को राज्याधिकार प्रदान कर देना चाहिए। पुनः अगर इनमें से कोई भी योग्य न हो तो दत्तक पुत्र, उसके अभाव में दौहित्र तथा उसके भी अभाव में भांजे को अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

स्वकनिष्ठं पितृव्यं वाऽनुजं वाऽग्रजसम्भवम्।
पुत्रं पुत्रीकृतं दत्तं यौवराज्येऽभिषेचयेत्।।
क्रमादभावे दौहित्रं स्वस्त्रीयं वा नियोजयेत्।
स्वहितायापि मनसा नैतान्संकर्षयेत्कचित्।।[8]

राज्य की अविभाज्यता

आचार्य शुक्र के मतानुसार अगर राजा के अनेक पुत्र हों तो उन सभी पुत्रों में राज्य का विभाजन नहीं होना चाहिए , क्योंकि राज्य के विभाजन से तथा एक राज्य में अनेक राजाओं के होने से राज्य का विनाश अवश्यंभावी है। यथोक्तं –

अनायका विनश्यन्ति नश्यन्ति बहुनायकाः।
स्त्रीनायका विनश्यन्ति नश्यन्ति बालनायकाः।।[9]

उपाय

आचार्य शुक्र चार उपायों को स्वीकार करते हैं। वे हैं - साम, दान भेद और दंड। इन उपायों का आचार्य शुक्ल ने तीक्ष्ण बुद्धि से प्रयोग किया है। जैसे कि अत्यंत प्रबल शत्रु के साथ साम और दान का, अपने से अधिक बलवान शत्रु के साथ साम और भेद का, अपने बराबर वाले के साथ भेद और दंड का तथा अपने से हीन शत्रु के साथ केवल दंड का प्रयोग करना श्रेयस्कर होता है।

अपनी प्रजा में शाम और दान का ही प्रयोग करना चाहिए, परंतु इनकी विफलता पर दंड का प्रयोग भी किया जा सकता है। उपाय की प्रशंसा करते हुए शुक्राचार्य जी कहते हैं कि उपाय से अभेद्य लोहा भी पिघलाया जा सकता है, उपाय से अग्नि को बुझाने वाले जल को अग्नि से ही सुखा दिया जाता है और मतवाले हाथी के मस्तक पर पैर भी रखा जा सकता है।[10]

राज्य के अंग

शुक्रनीति में आचार्य शुक्र ने राज्य के साथ अंग माने हैं। यथा राजा, मंत्री, मित्र, कोश, राष्ट्र, दुर्ग तथा बल। इन सभी में राजा को सर्वश्रेष्ठ अंग, सिर के समान माना गया है। मंत्री नेत्र, मित्र कान, कोश मुख, सेना मन, दुर्ग दोनों हाथ और राष्ट्र को दोनों पैर माना गया है। शुक्रनीति के पंचम अध्याय में राज्य की उपमा एक वृक्ष से दी गई है जहाँ राजा को मूल, मंत्रियों को स्कंध सेनापतियों को शाखाएँ, सेनाओं को पल्लव, प्रजाओं को फुल, कर को फल और बीज को राज्य की भूमि बताया गया है। यथोक्तं –

राज्यवृक्षस्य नृपतिर्मूलं स्कन्धाश्च मन्त्रिणः।
शाखाः सेनाधिपः सेनाः पल्लवाः कुसुमानि च।
प्रजाः फलानि भूभागा बीजं भूमिः प्रकल्पिता।[11]

मंत्रि - परिषद

शुक्राचार्य के अनुसार राजा की सहायता करने के लिए एक मंत्रिपरिषद भी बहुत जरूरी है। इस मंत्री परिषद में सदस्यों की संख्या दस होती है। मंत्रिपरिषद के सदस्य गुणवान, शुरवीर, राजभक्त, कुलीन, मधुरभाषी, हितोपदेष्टा, पवित्र आचार- विचार वाले, ईर्ष्या-द्वेष-काम-क्रोध-लोभ-आलस्य आदि गुणों से रहित होने चाहिए।[12]

मित्र

आचार्य शुक्र के अनुसार उपकार करने वाला व्यक्ति मित्र और अपकार करने वाला व्यक्ति शत्रु कहलाता है। चार पादों से युक्त [13] मित्र सर्वश्रेष्ठ होता है। चार पाद यथा – विद्या, शूरवीरता, चातुर्य बल और धैर्य, इन गुणों को शुक्राचार्य ने सहज मित्र माना है। मित्र के लिए साम तथा दान ही प्रयोग करना चाहिए।

कोश-संचय

राजा को सर्वदा न्यायोचित व्यवहार से कोश का संग्रह कर उसे राष्ट्र के हित के लिए सुरक्षित कर रखना चाहिए। कोश का संग्रह भागकर, आयकर और शुल्कादि के द्वारा किया जा सकता है। शुल्क माली की भाँति लेना चाहिए। शुल्क एक ही बार लेना चाहिए। शुल्क ग्रहण करते समय उस व्यक्ति के लाभ और हानि का भी ध्यान रखना चाहिए।

राष्ट्र

राजा के अधीन जो भी चलाचल पशु-पक्षी, मानव समाज आते हैं, उन सभी को मिला करके ही राष्ट्र कहा जाता है। राष्ट्र में विद्यमान ग्राम और नगरों की सुव्यवस्था राजा को ही करनी चाहिए, ग्राम के समुचित विकास और व्यवस्था के लिए दंडाधिपति आदि अधिकारियों की नियुक्ति करनी चाहिए। यथा –

साहसाधिपतिं चैव ग्रामनेतारमेव च।
भागहारं तृतीयं तु लेखकं च चतुर्थकम्।।[14]

दुर्ग

आचार्य शुक्र ने शुक्रनीति में नौ प्रकार के दुर्ग माने हैं। जैसे ऐरिण, पारिख,वन, धन्व, जल, गिरि, सैन्य और सहाय। इन सभी में सैन्य दुर्ग सर्वश्रेष्ठ होता है। इन दुर्गों को अन्न, अस्त्र-शस्त्र, शुरवीर सैनिकों को और सहायक बंधुओं से परिपूर्ण रखना चाहिए। सहायकों से पूर्ण दुर्ग में रहने से निश्चय ही राजा की विजय होती है।[15]

बल

आचार्य शुक्र के अनुसार बल छः प्रकार [16] के होते हैं। यथा - शारीरिक-बल, शौर्य-बल, सैन्य-बल, अस्त्र-बल, बुद्धि-बल और आयु-बल। बल के बिना राज्य संचालन करना सर्वथा असंभव ही प्रतीत होता है।

उपसंहार

आचार्य शुक्र द्वारा प्रणीत शुक्र नीति एक महान ग्रंथ तथा नीतिशास्त्र है। जहाँ यह ग्रंथ राजनीति विचारों के लिए उपयोगी है वहाँ गृहस्थ, व्यापारियों, पशुपालकों कृषकों के के लिए भी बहुत उपयोगी है। इस ग्रंथ में जहाँ राजा के कर्तव्यों का वर्णन है वहाँ नागरिकों के कर्तव्यों का भी उल्लेख किया गया है। नारी कर्तव्यों का विशद वर्णन इसमें प्राप्त होता है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी के आचरणों का भी वर्णन प्राप्त होता है। अतः यह ग्रंथ प्रत्येक मनुष्य के लिए अध्ययन करना बहुत उपयोगी प्रतीत होता है।

संधर्व ग्रन्थ सूचि

1. शुक्रनीति – 1.157
2. महाभारत. शान्तिपर्व – 57.15
3. शुक्र – 1.14
4. महा.शान्ति – 69.102
5. शुक्र – 1.71
6. वही – 1.70
7. वही – 1.14
8. वही – 2.15-16
9. वही – 1.347
10. वही – 4.7.281-2
11. वही – 5.11
12. वही – 2.8-9
13. वही – 4.1.3-4
14. वही – 2.118
15. वही – 4.6.1-13
16. वही – 4.7.5